[2010] 10 एस.सी.आर. 1132

उमाशंकर सिंह

बनाम

बिहार राज्य व अन्य

(विशेष अनुमति याचिका (क्रि.) नं. 5123/2009)

सितंबर 09, 2010

[अल्तमश कबीर एवं ए.के. पटनायक, जेजे.]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973: एस. 190(1)(ख) - मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध का संज्ञान - माना गया: मजिस्ट्रेट स्वतंत्र रूप से अपना दिमाग लगा सकता है और धारा 190(1)(ख) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपराध का संज्ञान ले सकता है, भले ही जांच एजेंसी की रिपोर्ट में अंतिम प्रपत्र अभियुक्त को बरी कर देता है - दंड संहिता, 1860 -एसएस.302, 391/34 - आयुध अधिनियम, 1959 - एस. 27

चुनाव प्रक्रिया के दौरान, एक अपराध हुआ और एक एफ.आई.आर. अंतर्गत धारा 302,291/34 भा.दं.सं. एवं धारा 27 आयुध अधिनियम में दर्ज की गयी। उक्त घटना में काफी हंगामा होने के कारण विवेचना सी.आई.डी. को सौंप दी गयी। वादी मुकदमा ने इस निर्णय को उच्च न्यायालय में चुनौती दी। उच्च न्यायालय द्वारा सी.आई.डी. एवं पुलिस को आदेश किया कि अपनी रिपोर्ट संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष दो माह के अंदर दाखिल करें और उक्त रिपोर्ट दाखिल होने के पश्चात् मजिस्ट्रेट को निर्देशित किया गया कि दोनों रिपोर्ट एवं केश डायरी पर विचार करने के बाद विधि अनुसार कार्यवाही करें। उच्च न्यायालय के आदेश के अनुक्रम में उक्त घटना की विवेचना सी.आई.डी. एवं स्थानीय पुलिस द्वारा किया गया और याचिकाकर्ता के विरूद्ध अंतिम रिपोर्ट दाखिल की गयी, जबकि अन्य अभियुक्त के विरूद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। हालांकि केस डायरी में सामग्री की जांच करने के बाद, मजिस्ट्रेट ने जांच एजेंसी द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट से असहमति जताई और याचिकाकर्ता के खिलाफ अपराध का संज्ञान लिया।

याचिकाकर्ता द्वारा सत्र न्यायालय के समक्ष उन्मोचन का प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 227 दं.प्र.सं. दाखिल किया गया, जो निरस्त कर दिया गया और आरोप निर्धारण करने के लिए तिथि नियत की गयी। उच्च न्यायालय द्वारा सत्र न्यायालय के आदेश को रद्द करने की याचिका को खारिज कर दिया गया। तत्काल विशेष अनुमति याचिका उच्च न्यायालय के आदेश के विरूद्ध दायर की गयी।

कोर्ट द्वारा विशेष अनुमति याचिका खारिज की गयी।

मानाः 1. विधि स्पष्ट रूप से स्थापित है कि भले ही जांच अधिकारियों का यह मानना है कि आरोपी के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है, मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट में शामिल प्रपत्रों पर स्वतंत्र रूप से विचार कर सकता है और धारा 190 (1) (ख) दं.प्र.सं. के अंतर्गत संज्ञान लेने में सक्षम है। वर्तमान मुकदमे में स्पष्ट रूप से यही तथ्य है। उक्त मुकदमे में जांच सी.आई.डी. को सौंप दी गयी और सी.आई.डी. एवं स्थानीय पुलिस द्वारा अंतिम रिपोर्ट दाखिल किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता को प्रथम सूचना रिपोर्ट में जो आरोप लगाये गये थे उससे बरी कर दिया गया। हालांकि मजिस्ट्रेट द्वारा याचिकाकर्ता के विरूद्ध धारा 302/379 भा.दं.सं. एवं धारा 27 आयुध अधिनियम में संज्ञान लिया गया। यह ऐसा मामला नहीं था कि मजिस्ट्रेट द्वारा अग्रिम जांच का आदेश पारित किया गया था, बल्कि उनके द्वारा अंतिम रिपोर्ट पर संज्ञान लिया गया, जोकि धारा 190(1)(ख) के तहत करने का अधिकार प्राप्त है। इसके बाद भी याचिकाकर्ता के

खिलाफ आरोप विरचित किये गये, जिससे तत्काल कार्यवाही निष्फल हो गयी थी। [पैरा 15-17] [1140-सी-एच; 1141-ए]

इंडिया कैरेट प्राईवेट लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य व अन्य **(1989) 2 एससीसी 132;** *अभिनन्दन झा बनाम दिनेश मिश्रा* **(1967) 3 एससीआर 668 - पर आधारित**

धर्मपाल व अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य **(2004) 13 एससीसी 9 - भेदित**

राजकिशोर प्रसाद बनाम बिहार राज्य **(1996) 4 एससीसी 495;** *रंजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य* **(1998) 7 एससीसी 149;** *किशुन सिंह व अन्य बनाम बिहार राज्य* **(1993) 2 एससीसी 16;** *किशोरी सिंह व अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य* **(2004) 13 एससीसी 11- संदर्भित**

केस कानून संदर्भः

(1996) 4 एससीसी 495	**संदर्भित किया गया**	**पैरा 9**
(1998) 7 एससीसी 149	**संदर्भित किया गया**	**पैरा 10,11,12**
(1993) 2 एससीसी 16	**संदर्भित किया गया**	**पैरा 11, 13**
(2004) 13 एससीसी 11	**संदर्भित किया गया**	**पैरा 12**
(1989) 2 एससीसी	**आश्रित है**	**पैरा 12**
(2004) 13 एससीसी	**भेदित**	**पैरा 13**
(1967) 3 एससीआर 668	**आश्रित है**	**पैरा 15**
(2004) 13 एससीसी 9	**भेदित**	**पैरा 13,14,15**

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकारः विशेष अनुमति याचिका (क्रिमिनल) नं. 5123/2009

पटना में स्थित उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांकित 12.05.2009 में क्रिमिनल मिस. नं. 18909/2007

पी.एस. मिश्रा, नागेन्द्र राय, आलोक कुमार, तथागत हर्षवर्धन, उपेन्द्र मिश्रा, ध्रुव झा, शांतनु सागर, स्मारहर, मौ. शाहिद अनवर, गोपाल सिंह, मनीष कुमार, चंदन कुमार, उपस्थित पक्ष के लिए।

न्यायालय का यह निर्णय प्रदत्त किया गया

अल्तमश कबीर, जे. 1. दिनांक 17 फरवरी 2000 को विजय सिंह, जोकि भरत सिंह (मृतक) एवं दामोदर सिंह जो बिहार विधानसभा में स्वतंत्र उम्मीदवार थे, ने महाराजगंज पुलिस स्टेशन पर एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी, जोकि मुकदमा संख्या 14/2000 के रूप में दर्ज किया गया। उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह कथन किया गया कि दामोदर सिंह, जोकि वादी मुकदमा के भाई हैं, एक स्वतंत्र उम्मीदवार के रूप में बिहार विधानसभा का चुनाव लड़ रहे थे। जब मतदान प्रगति पर था, भरत सिंह चुनावी कार्यालय में बैठे हुए थे, तभी उन्हें सूचना प्राप्त हुई कि किसी एक बूथ पर फर्जी वोट डाले जा रहे हैं और लगभग 11.30 बजे एक बम विस्फोट की आवाज सुनकर वह घटना स्थल पर पहुंचे। प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार वादी मुकदमा जीप से वहां पहुंचे और भरत सिंह मोटरसाईकिल पर उनके पीछे घटना स्थल पर पहुंचे। घटना स्थल पर पहुंचने पर उन्हें यह सूचना मिली की एक लड़के को चोट लगी है और उसे महाराजगंज राजकीय अस्पताल इलाज के लिए भेजा गया है।

2. जब वह अस्पताल परिसर से बाहर निकल रहे थे, तभी उमाशंकर सिंह जोकि विधानसभा चुनाव में समता पार्टी के उम्मीदवार थे और उनके पुत्र जितेन्द्र स्वामी अन्य अज्ञात व्यक्तियों के साथ जोकि हथियारबद्ध थे, के साथ घटनास्थल पर पहुंचे और उमाशंकर सिंह के आदेश पर उनके पुत्र जितेन्द्र स्वामी भरत सिंह को मोटरसाईकिल से जबरदस्ती खींच लिया और उन्हें कार में धकेलकर अज्ञात स्थान पर लेकर चले गये।

3. उक्त मुकदमे की शुरूआत की एफ.आई.आर. अंतर्गत धारा 364/34 भा.दं.सं. में दर्ज की गयी थी, लेकिन भरत सिंह का शव मिलने के बाद धारा 302,291,34 भा.दं.सं. एवं धारा 27 आयुध अधिनियम की वृद्धि की गयी। उक्त घटना में काफी हंगामा होने के कारण विवेचना सी.आई.डी. को सौंप दी गयी। वादी मुकदमा विजय सिंह राज्य सरकार द्वारा उक्त निर्णय से हतोत्साहित हुए, जिसके कारण उन्होंने इस निर्णय को चुनौती दी, जोकि क्रिमिनल डब्लू.जे.सी. नं. 288/2000 जोकि उच्च न्यायालय द्वारा 09 अप्रैल, 2001 को निस्तारित किया गया, जिसमें यह टिप्पणी दी गयी कि यह मामला दो राजनीतिक हस्तियों के बीच लड़ाई का है और उक्त मुकदमे में एक एजेंसी द्वारा जांच पूर्ण की जा चुकी है और सी.आई.डी. द्वारा भी जांच पूर्ण की जानी है। यह प्रश्न उठेगा कि आरोप पत्र अंतर्गत धारा 173(2) दं.प्र.सं. पहली जांच एजेंसी या फिर सी.आई.डी. द्वारा दाखिल की जायेगी। उच्च न्यायालय द्वारा सी.आई.डी. एवं पुलिस अधीक्षक, सिवान को आदेश किया कि उनके द्वारा आरोप पत्र मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष दो माह के अंदर दाखिल करें और उक्त रिपोर्ट दाखिल होने के पश्चात् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को निर्देशित किया गया कि दोनों रिपोर्ट एवं केश डायरी पर विचार करने के बाद विधि अनुसार कार्यवाही करें।

4. उच्च न्यायालय के आदेश के अनुक्रम में उक्त घटना की विवेचना सी.आई.डी. एवं स्थानीय पुलिस द्वारा किया गया और याचिकाकर्ता के विरूद्ध अंतिम रिपोर्ट दाखिल की गयी, जबकि अन्य अभियुक्त के विरूद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। हालांकि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, द्वारा अंतिम रिपोर्ट को खारिज करते हुए जितेन्द्र स्वामी एवं अन्य अभियुक्त के विरूद्ध भी मुकदमे में संज्ञान लिया गया।

5. इस कारणवश याचिकाकर्ता द्वारा उन्मोचन का प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 227 दं.प्र.सं. दाखिल किया गया। उक्त प्रार्थना पत्र की सुनवाई अपर सत्र न्यायालय श्रीमान द्वारा किया गया, जिन्होंने अपने आदेश दिनांक 09 मार्च, 2007 से याचिकाकर्ता के प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा 227 सीआर.पी.सी. को निरस्त कर दिया और आरोप निर्धारण करने के लिए तिथि नियत की गयी।

6. याचिकाकर्ता द्वारा क्रिमिनल मिस. केस नं. 18909/2007 उच्च न्यायालय पटना में प्रथम अपर सत्र न्यायालय, सिवान द्वारा पारित आदेश दिनांक 09 मार्च, 2007 को निरस्त करने हेतु दाखिल किया गया। उच्च न्यायालय द्वारा क्रि. मिस. केस को अपने आदेश दिनांक 12 मई, 2009 से निरस्त कर दिया गया। यह विशेष अनुमति याचिका दिनांक 17 जुलाई, 2009 को उच्च न्यायालय के निर्णय एवं आदेश के विरूद्ध दायर की गयी।

7. याचिकाकर्ता द्वारा यह आग्रह किया गया कि जब जांच एजेंसी द्वारा दाखिल आरोप पत्र में उसे आरोपी नहीं बनाया गया है, तो मजिस्ट्रेट द्वारा उक्त अभियुक्त के विरूद्ध संज्ञान नहीं लिया जाना चाहिए था और विचारणीय न्यायालय द्वारा धारा 319 दं.प्र.सं. की अवस्था तक इन्तजार करना चाहिए था, तभी याचिकाकर्ता को उक्त मुकदमे में याचिकाकर्ता को आरोपित करना चाहिए था। श्रीमान विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने बार-बार दोहरायी जाने वाली बात को दोहराते हुए कहा कि संज्ञान हमेशा अपराध का लिया जाता है, न कि अपराधियों का। श्रीमान मिश्रा द्वारा यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया कि उक्त मुकदमे की विवेचना सी.आई.डी. द्वारा उच्च न्यायालय के आदेश के अनुक्रम में किया गया था। हालांकि कथित अपराध सत्र न्यायालय द्वारा विचाराधीन है, लेकिन मजिस्ट्रेट द्वारा गलत तरीके से उक्त अपराध का संज्ञान लिया गया है।

8. श्रीमान मिश्रा द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि धारा 190 के तहत अन्य कई तरीकों से अपराध में संज्ञान लिये जाने में से एक पुलिस रिपोर्ट जो कि अपराध के कथनों पर

आधारित हो। श्रीमान मिश्रा द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया कि मौजूदा दं.प्र.सं. 1973 अधिनियम से पहले जिस पर आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1898 को प्रतिस्थापित किया था, में यह उल्लिखित है कि यदि मजिस्ट्रेट जांच एजेंसियों द्वारा अंतिम रिपोर्ट से असहमत है, तो वह स्वतंत्र है कि वह अलग से जांच करे और उसके पश्चात् ही उक्त मुकदमे में संज्ञान ले। हालांकि नई संहिता के तहत उक्त प्रक्रिया को संशोधित प्रावधान को धारा 209 से समाप्त कर दिया गया है, जिससे यह स्पष्ट है कि जब किसी भी पुलिस रिपोर्ट या किसी अन्य तरीके से मुकदमा पंजीकृत किया जाता है और अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाता है या फिर लाया जाता है, अपराध का विचारण विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा किये जाने के कारण धारा 207 एवं 208 के प्रावधानों का अनुपालन करने के बाद उक्त मुकदमे को सत्र न्यायालय के समक्ष सुपुर्द किया जायेगा। न्यायालय के सामने यह भी कथन किया गया कि अगर मुकदमा सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय है तो मजिस्ट्रेट के सामने उक्त मुकदमे को सुपुर्द किये जाने को छोड़कर कोई और विकल्प नहीं है। दूसरे शब्दों में अगर अंतिम रिपोर्ट अंतर्गत धारा 302 सीआर.पी.सी. में किसी को आरोपी नहीं बनाया गया है, तो मजिस्ट्रेट के पास जांच करने की कोई गुंजाइश नहीं बची है, बल्कि धारा 319 सीआर.पी.सी. के तहत संज्ञान लिया जा सकता है, जोकि विचारण के समय प्रस्तुत किया गया।

9. उक्त प्रस्ताव के समर्थन में *राजकिशोर प्रसाद बनाम बिहार राज्य* [(1996) 4 एस सी सी 495], में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए, जिसमें इसी तरह के प्रश्न उत्पन्न हुए थे, में यह निर्णित किया गया कि धारा 319 सीआर.पी.सी. आरोपी को छोड़कर अन्य लोगों के विरूद्ध लागू होगी, जोकि उन साक्ष्यों पर निर्भर करेगी जोकि ट्रायल और जांच के दौरान सामने आये न कि मजिस्ट्रेट के समक्ष अंतर्गत धारा 209 सीआर.पी.सी. में, क्योंकि वह विचारणीय प्रक्रिया नहीं है औ न ही उनका कभी ऐसा होना ही बताया गया है।

10. इसके बाद *रंजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य* [(1998) *7* एससीसी 149] में तीन न्यायमूर्तियों की पीठ के फैसले के निर्णय का संदर्भ दिया गया, जिसमें माननीय न्यायमूर्तियों द्वारा यह निर्णय किया गया कि अगर किसी भी मुकदमे को सत्र न्यायालय के अंतर्गत धारा 209 में सुपुर्द किया जाता है, तो सत्र न्यायालय के पास किसी भी नये व्यक्ति को अभियुक्त बनाने का क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं है, जब तक कि अभियोजन की ओर से साक्ष्य प्रस्तुत न किये गये हों और धारा 319 दं.प्र.सं. में प्रदत्त शक्तियों के अलावा कोई और शक्ति नहीं है, जिसके कारण सत्र न्यायालय द्वारा किसी नये व्यक्ति को अभियुक्त बनाया जा सके। उक्त में यह भी निर्णित किया गया कि धारा 209 दं.प्र.सं. एवं धारा 319 दं.प्र.सं. के तहत प्रतिबद्धता के बीच कोई भी मध्यस्थ चरण नहीं है, जिसके कारण किसी नये व्यक्ति को अभियुक्त बनाया जा सके।

11. श्रीमान मिश्रा द्वारा यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया कि *रंजीत सिंह* के मामले में, जो विचार व्यक्त किये गये थे, वह *किशुन सिंह व अन्य बनाम बिहार राज्य*, [(1993) 2 एससीसी 16], के विपरीत थे, जहां पर 20 व्यक्तियों का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में दर्ज था, लेकिन मजिस्ट्रेट द्वारा 18 ही व्यक्तियों को अंतर्गत धारा 209 दं.प्र.सं. में सत्र न्यायालय में विचारण हेतु सुपुर्द किया गया था। धारा 319 दं.प्र.सं. में एक प्रार्थना पत्र इस आशय का प्रस्तुत किया गया कि दो अभियुक्त जिनका भी नाम उक्त मुकदमे में था, उन्हें भी न्यायालय द्वारा समन किया जाये और अन्य 18 अभियुक्तों के साथ मुकदमे में अभियुक्त बनाया जाये। उन दो व्यक्तियों द्वारा उक्त प्रार्थना पत्र पर आपत्ति प्रस्तुत किये जाने के बावजूद भी सत्र न्यायालय द्वारा अपने विवेक का प्रयोग करते हुए उन दो व्यक्तियों को भी अन्य 18 व्यक्तियों के साथ अभियुक्त बनाया गया। सत्र न्यायालय द्वारा पारित आदेश का पुनरीक्षण उच्च न्यायालय के द्वारा किया गया, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया गया। उच्च न्यायालय द्वारा यह निर्णित किया गया कि यद्यपि

धारा 319 दं.प्र.सं. के चरण तक मुकदमा नहीं पहुंचा है, लेकिन सत्र न्यायालय द्वारा उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर क्षेत्राधिकार प्राप्त है कि वह दो व्यक्तियों को अभियुक्त बनाकर धारा 193 दं.प्र.सं. के अंतर्गत संज्ञान ले सकता है।

12. यही प्रश्न *किशोरी सिंह बनाम बिहार राज्य एवं अन्य* [(2004 (13) एससीसी 11] के मामले में भी विचारण में आया था, जिस पर न्यायालय द्वारा *रंजीत सिंह* मुकदमे को सही विधि मानते हुए पालन किया गया था। हालांकि *इंडिया कैरेट प्राईवेट लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य एवं अन्य* [(1989)2 एससीसी 132], को भी तीन न्यायमूर्तियों की पीठ के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, जिस पर न्यायालय द्वारा यह निर्णय लिया गया कि आरोप पत्र आने के बावजूद भी अगर अभियुक्त के विरूद्ध कोई मामला नहीं बनता है, तब भी मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 190(1)(ख) के प्रावधान के अंतर्गत संज्ञान लिया जा सकता है, जिसमें उन्हें विवेचना के समय गवाहों के बयान को ध्यान में रखना है एवं प्रोसेस जारी करना है।

13. अन्ततः *धर्मपाल बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य* [(2004) 13 एससीसी 9], में भी दो न्यायमूर्तियों के समक्ष यह विचार करने के लिए आया जब इस न्यायालय की विभिन्न पीठों द्वारा व्यक्त किये गये अलग-अलग विचारों को कारण मामले को तीन न्यायमूर्तियों के बीच सुने जाने का निर्देश दिया गया। उक्त बिन्दुओं पर विचार करने के उपरांत तीन न्यायमूर्तियों की खण्ड पीठ द्वारा यह प्रथम दृष्टया पाया गया कि *रंजीत सिंह* मामले में जो व्याख्या की गयी थी वह सही विधि नहीं है और *किशुन सिंह* मामले में विधि स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया था। उक्त मामले में यह भी तथ्य को ध्यान में रखा गया कि *रंजीत सिंह* मामले का निर्णय तीन न्यायमूर्तियों की खण्ड पीठ द्वारा निर्णित किया गया था, इसलिए विद्वान न्यायमूर्ति द्वारा उक्त मामले को भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष रखने का प्रस्ताव दिया गया, जोकि उक्त मामले को बड़े खण्ड पीठ के समक्ष रखा जा सके।

14. श्रीमान नागेन्द्र राय, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जोकि अन्य उत्तरदाताओं की तरफ से न्यायालय में उपस्थित थे, ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि जो प्रश्न बड़ी पीठ के समक्ष *धर्मपाल* के मुकदमे में रखा गया था वह इस मुकदमे पर लागू नहीं है, क्योंकि इस मुकदमे के तथ्य भिन्न हैं। श्रीमान राय द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि जांच अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट को स्वीकार करने के लिए मजिस्ट्रेट बाध्य नहीं है और पुलिस आख्या के आधार पर भी अन्य अभियुक्त के विरूद्ध भी प्रक्रिया जारी कर सकता है, इसके बावजूद की जांच अधिकारियों द्वारा बरी किया गया है।

15. श्रीमान राय के तर्कों में वजन है कि उक्त मामले के निर्णय के लिए धर्मपाल के मामले में एक बड़ी बैंच के दिये गये परिणाम की प्रतीक्षा करना आवश्यक नहीं है। संदर्भ इस आशय का किया गया है कि जांच अधिकारियों द्वारा जो अंतिम रिपोर्ट दाखिल किया गया है अगर मजिस्ट्रेट उससे असहमत है तो क्या वह जांच की शक्ति है या नहीं। इस मामले में तथ्य भिन्न हैं और *इंडिया कैरेट प्राईवेट लिमिटेड* (सुपरा) के निर्णय में शामिल है, जोकि *अभिनन्दन झा बनाम दिनेश मिश्रा* (1967) 3 एस सी आर 668 की तर्ज पर है। विधि स्पष्ट रूप से स्थापित है कि भले ही जांच अधिकारियों का यह मानना है कि आरोपी के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है, मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट में शामिल प्रपत्रों पर स्वतंत्र रूप से विचार कर सकता है और धारा 190 (1) (ख) दं.प्र.सं. के अंतर्गत संज्ञान लेने में सक्षम है।

16. वर्तमान मुकदमे में स्पष्ट रूप से यही तथ्य है। उक्त मुकदमे में जांच सी.आई.डी. को सौंप दी गयी और सी.आई.डी. एवं स्थानीय पुलिस द्वारा अंतिम रिपोर्ट दाखिल किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता को प्रथम सूचना रिपोर्ट में जो आरोप लगाये गये थे उससे बरी कर दिया गया। हालांकि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सिवान द्वारा याचिकाकर्ता के विरूद्ध धारा 302/379

भा.दं.सं. एवं धारा 27 आयुध अधिनियम में संज्ञान लिया गया। यह ऐसा मामला नहीं है कि मजिस्ट्रेट द्वारा अग्रिम जांच का आदेश पारित किया गया था, बल्कि उनके द्वारा अंतिम रिपोर्ट पर संज्ञान लिया गया, जोकि धारा 190(1)(ख) के तहत करने का अधिकार प्राप्त है।

17. इसके बाद भी याचिकाकर्ता द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 281/2006 में प्रथम अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, सिवान के समक्ष उन्मोचित किये जाने हेतु प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया, जो कि धारा 227 दं.प्र.सं. के अंतर्गत था, को सत्र न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया गया और आरोप विरचित किये जाने हेतु पत्रावली नियत की गयी। न्यायालय को यह भी सूचित किया गया है कि उक्त मामले में याचिकाकर्ता के विरूद्ध आरोप विरचित किये जा चुके हैं। इसके कारणवश वर्तमान कार्यवाही निष्फल रही और याचिकाकर्ता को यदि कोई अनुतोष मिल सकता है, तो वह उपलब्ध नहीं है।

18. विशेष अनुमति याचिका इन टिप्पणियों के आलोक में निरस्त किया जाता है।

एस.एल.पी. निरस्त।

अनुवाद कर्ता- सुमित परासर
न्यायिक मजिस्ट्रेट,
मुरादाबाद।